✽ श्रीश्रीगुरुगौराङ्गौ जयतः ✽

स वै पुंसां परो धर्मो यतो भक्तिरधोक्षजे ।

धर्मः स्वनुष्ठितः पुंसां विष्वक्सेन कथासु यः

भागवत-पत्रिका

नोत्पादयेद् यदि रतिं श्रम एव हि केवलम्

अहैतुक्यप्रतिहता ययात्मासुप्रसीदति ॥

सर्वोत्कृष्ट धर्म है वह जो आत्मा को आनन्द प्रदायक ।
भक्ति अधोक्षज की अहैतुकी विघ्नशून्य अति मंगलदायक ॥

सब धर्मों का श्रेष्ठ रीति से पालन करते जीव निरन्तर ।
किन्तु हरि-कथा-प्रीति न हो, श्रम व्यर्थ सभी, केवल बंधनकर ॥

वर्ष ९ | गौराब्द ४७७, मास—नारायण १५, वार-प्रद्युम्न
मंगलवार, २९ पौष, सम्वत् २०२०, १४ जनवरी १९६४ | संख्या ८

श्रीश्रीगौराङ्गस्मरणमङ्गल-स्तोत्रम्

[श्रीश्रीलठाकुर भक्तिविनोद कृत]

पुरीदेवे भक्तिं गुरुचरणयोग्यां सुमधुरां दया गोविन्दाख्ये विशदपरिचर्याश्रितजने ।
स्वरूपे यो प्रीतिमधुररसरूपां ह्यकुरुत शचीसूनुः शश्वत् स्मरणपदवीं गच्छतु स मे ॥७१॥

दधानः कौपीनं वसनमरुणं शोभनमयं सुवर्णाद्रेः शोभां सकलसुशरीरे दधदपि ।
जपन् राधाकृष्णं गलदुदकधाराक्षियुगलः शचीसनुः शश्वत् स्मरणपदवीं गच्छतु स मे ॥७२॥

मुदागायन्नुच्चैर्मधुरहरिनामावलिमसौ नटन् मन्दं मन्दं नगरपथगामि सहजनैः ।
वदन् काक्वारेरे वदहरिहरित्यक्षरयुगं शचीसूनुः शश्वत स्मरणपदवीं गच्छतु स मे ॥७३॥

रहस्यं शास्त्राणां यदपरिचितं पूर्वं विदुषां श्रुतेर्गूढं तत्त्वं दशपरिमितं प्रेमफलितम् ।
दयालुस्तद्योऽसौ प्रभुरतिकृपाभिः समवदत् शचीसूनुः शश्वत् स्मरणपदवीं गच्छतु स मे ॥७४॥

आम्नायः प्राह तत्त्वं हरिमिह परमं सर्वशक्ति रसाब्धि
तद्भिन्नांशांश्च जीवान् प्रकृतिकवलितान् तद्विमुक्तांश्च भावात् ।
भेदाभेदप्रकाशं सकलमपि हरेः साधनं शुद्धभक्ति
साध्यं यत्प्रीतिमेवेत्युपदिशति हरो गौरचन्द्रं भजे तम् ॥७५॥

स्वतः सिद्धो वेदो हरिदयितवेधः प्रभृतितः प्रमाणं सत्प्राप्तं प्रमितिविषयान् तान्नवविधान् ।
तथा प्रत्यक्षादिप्रमितिसहितं साधयति नः न युक्तिस्तर्काख्या प्रविशति तथा शक्तिरहिता ॥७६॥

हरिस्त्वेकं तत्त्वं विधिशिवसुरेश प्रणमितः यदेवेदं ब्रह्मोपनिषदुदितं तत्तनुमहः ।
परात्मा तस्यांशो जगदनुगतो विश्वजनकः सवै राधाकान्तो नवजलदकान्तिश्चिदुदयः ॥७७॥

पराख्यायाः शक्तेरपृथकपि स स्वे महिमनि स्थितो जीवाख्यांस्वामचिदभिहितां त्रिपदिकाम् ।
स्वतन्त्रेच्छः शक्तिं सकलविषये प्रेरयति यो विकाराद्यैः शून्यः परमपुरुषोऽसौ विजयते ॥७८॥

सवै ह्लादिन्याश्च प्रणयविकृते ह्लादनरतः तथा संविच्छक्तिप्रकटितरहोभाव रसितः ।
तथा श्रीसन्धिन्या कृतविशदतद्धामनिचये रसांभोधौ मग्नौ व्रजरसविलासी विजयते ॥७६॥

स्फुलिंगा ऋद्धाग्नेरिव चिदणवो जीवनिचया हरेः सूर्यस्यैवापृथगपितु तद्भेदविषयाः ।
वशे माया यस्य प्रकृतिपतिरेवेश्वर इह सजीवोमुक्तोऽपि प्रकृतिवशयोग्यः स्वगुणतः ॥८०॥

स्वरूपार्थैर्हीनान् निजसुखपरान् कृष्णविमुखान् हरेर्माया दण्ड्यान् गुणनिगड़जालैः कलयति ।
तथा स्थूलैर्लिङ्गैर्द्विविधवरणैः क्लेशनिकरैर्महाकर्मालानैर्नयति पतितान् स्वर्गनिरयौ ॥८१॥

यदा भ्रामं भ्रामं हरिरसगलद् वैष्णवजनं कदाचित् संपश्यन् तदनुगमने स्याद्रुचियुतः ।
तदा कृष्णावृत्या त्यजति शनकैर्मायिकदशां स्वरूपं बिभ्राणो विमलरसभोगं स कुरुते । ८२॥

हरेः शक्तेः सर्वं चिदचिदखिलं स्यात्परिणतिः विवर्तं नो सत्यं श्रुतिमितिविरुद्धं कलिमलम् ।
हरेर्भेदाभेदौ श्रुतिविहित तत्त्वं सुविमलं ततः प्रेम्नः सिद्धिर्भवति नितरां नित्य विषये ॥८३॥

श्रुतिः कृष्णाख्यानं स्मरणनतिपूजाविधिगणास्तथा दास्यं सख्यं परिचरणमप्यात्मददनम् ।
नवाङ्गानि श्रद्धा-पवितहृदयः साधयति वा व्रजे सेवालुब्धो विमलरसभावं स लभते ॥८४॥

स्वरूपावस्थाने मधुररसभावोदय इह व्रजे राधाकृष्ण स्वजनजनभावं हृदि वहन् ।
परानन्दे प्रीतिं जगदतुल संपत्सुखमहो विलासाख्ये तत्त्वे परमपरिचर्या स लभते ॥८५॥

(क्रमशः)

पद्यानुवाद—

श्रीपरमानन्द पुरीमें करत प्रभु गुरु भाय ।
गुरुपार्षद गोविन्द प्रति करत दया सरसाय ॥
मानत प्रभु स्वरूप सो मधुर रसमयी प्रीत ।
शची सुवनकी भावमय अकथ अलौकिक रीत ॥७१॥

कमर कोपनी गेरुया बहिर्वास परिधान ।
जलज नयन रोमाञ्च तनु कनक गिरीश समान ॥
जपत 'राधिका कृष्ण मनु' बहत नयन जलधार ।
दासन हित जग जन हृदय कल्मस कढत बहार ॥७२॥
मन्द-मन्दनिरतत चलत गाय मधुर हरिनाम ।
जाचत विनती कर जनन 'हरि बोलो' सुखधाम ॥७३॥
अविदित पूरब बुध जनन गूढ़ तत्त्व श्रुतिसार ।
करुणा कर सो जीव हित कीनो प्रभू प्रचार ॥
सब शास्त्रन सिद्धान्त मथ दस संख्या परिमान ।
चरम 'प्रेम फल' सह दई प्रभु सुवलित विज्ञान ॥७४॥

सर्वशक्तियुत् (१) रस जलधि (२) परम तत्त्व (३) हरि एक।
वरणे तीन प्रमेय ये आगम (४) सहित विवेक ॥
सकल जगतके जीव हरि विभिन्नांश (५) कर जान ।
माया कवलित (६) मुक्त (७) अरु भावभेद पहचान ॥
भेदाभेद 'अचिन्त्य' हरि जगत चराचर (८) एह ।
शुद्ध भक्ति है साधना (९) पर फल प्रेम सनेह (१०) ॥
जीवन कौ शिक्षा दई यही गौरहरि राय ।
याही कौ विस्तार कछु देत यहाँ समुझाय ॥७५॥

(१) हरि प्रिय ब्रह्मादिक वचन 'आगम' स्वतः प्रमान ।
'प्रत्यक्ष' हू प्रमान अरु तदनुसार 'अनुमान' ॥
नव प्रमेय साधन सकल यही त्रिविध परमान ।
होत न यामें तर्क अरु युक्ती को सन्धान ॥७६॥

(२) विधि शिव सुरगण प्रणतपद, एक तत्त्व 'भगवान' ।
तिन तनु द्युति मण्डल सोई 'ब्रह्म' उपनिषद गान ॥
'परमात्मा' हरि अंश है व्यापक जगत मझार ।
विश्व जनक ब्रह्माण्ड पति पुरुष सोई निरधार ॥
भगवत, अरु परमात्मा, ब्रह्म, 'तत्त्व' सब एक ।
पूरन 'श्रीनन्दलाल' हैं अधिकृत भेद विवेक ॥७७॥

(३) हरि 'पर शक्ति' अभिन्न ह्वै नित निवसत निजधाम ।
जीव शक्ति, जड़ शक्ति, कौ प्रेरण करत निकाम ॥
सब बिकार ते शून्य हरि सकल विषय स्वच्छन्द ।
सर्व शक्ति युत पर पुरुष सत् चित ज्ञानानन्द ॥७८॥
(४) आह्लादिनीके प्रणय तें आह्लादित सुख रास ।
रहत भाव प्रकटित सबै 'संवित शक्ति' प्रकाश ॥
'सन्धिनी शक्ति' अधार तिह् रचित धाम रससार ।
व्रजलीला रस मगन हरि निस दिन करत विहार ॥७६॥
(५) अग्नि फुलिङ्ग समान सब चित्कण 'जीव समूह' ।
सूर्य किरण सम हरी सौं 'भिन्न अभिन्न' अनूह ॥
माया जाके बस सोई प्रकृति पती 'जगदीस' ।
परत प्रकृति के फन्द जो सोई जीव अनीस ॥८०॥
(६) जीव रूप 'हरिदासता' विमुख, ताहि जो भूल ।
विषय वासनामें परे हरि भावन प्रतिकूल ॥
हरि माया दण्डत तिनैं, बान्ध त्रिगुण जञ्जाल ।
देह, उभय इन्द्रिय, करम, निरय, स्वर्ग, चिरकाल ॥८१॥
(७) भ्रमत-भ्रमत जब जीव कहुँ, पावत वैष्णव सङ्ग ।
तिन अनुगति ते लहत है, कृष्ण भजन रस-रङ्ग ॥
शनकैः 'मायिक दशा' तज, दासरूप निज लाय ।
भोगत जगकौ विमल रस, सिद्ध मुक्ति सुख पाय ॥८२॥
चिदचित जग हरि शक्ति कौ अहै सकल परिणाम ।
गुण फणि सीपी-रजत जिमि, नहिं 'विपते' सौं काम ॥
मायावाद, विवर्त, सब, कीजै कलिमल ज्ञान ।
श्रुतिविरुद्ध सिद्धान्त यह मन मानों न 'प्रमान' ॥
(८) 'भेदा-भेद-अचिन्त्य' जग हरि सौं श्रुति सिद्धान्त ।
लहत जीव या ज्ञान तें श्री हरि प्रेम नितान्त ॥८३॥
(९) श्रवण, कीर्तन, स्मरण नति पूजन पद-सम्मान ।
दास्य, सख्य, नव भक्ति ये 'हरि पद आत्मा दान' ॥
'विधि-भक्ति' नव अङ्ग ये व्रज सेवा 'अनुराग' ।
दोउन तें व्रजमें मिलत परिकर जनम सुहाग ॥
लहत 'रूप' विधि भक्ति तें रागभक्ति तें प्रेम ।
निमल होत कृसानु ते कान्ति 'ओप' तें हेम ॥८४॥
(१०) देही लब्ध स्वरूप जब उदित मधुर रस सार ।
परिकर ह्वै सेवा लहत राधानन्द कुमार ॥८५॥

—परलोकगत पण्डित् मधुसूदनदास गोस्वामी कृत्

सर्व-प्रधान विवेचनीय विषय

गौड़ीय-वैष्णव सम्प्रदाय कहनेसे चार श्रेणीके लोगोंका बोध होता है। इन चार श्रेणियोंके सभी वैष्णवगण परस्पर Complementry and Supplementry part हैं। जीव मात्र ही वैष्णव है। जिनका अपने अस्तित्वमें ऐकान्तिक विष्णुदास्य के अतिरिक्त कुछ दूसरा ही अभिमान होता है, वे नित्य विष्णुदास होने पर भी लोग उन्हें वैष्णव नहीं कहते। वैष्णवोंकी चार श्रेणियाँ हैं—

(१) गृहत्यागी परमहंस - धर्म अर्थात् विशुद्ध भगवद्भक्ति - धर्मके आचार एवं प्रचारमें निपुण निष्किंचन गोस्वामी वैष्णवगण।

(२) गृहस्थाश्रममें रहकर शुद्ध भक्तिका आचरण करनेवाले आचार्य गोस्वामीगण।

(३) यथार्थ गृह-त्यागी निष्किंचन गोस्वामियोंके निष्कपट गृहस्थ और गृह-त्यागी दोनों प्रकारके आचरणपरायण शिष्य-समूह।

(४) परमार्थ-विरोधी स्मार्त - आचारोंका पालन करने वाले गृहस्थ और गृहत्यागी दोनों प्रकारके मिश्र वैष्णव-पथावलम्बी वैष्णवगण।

इन चारों प्रकारके वैष्णवोंके अतिरिक्त कुछ ऐसे भी लोग हैं, जो छिप - छिप कर दुराचारमें निरत रहते हैं, परन्तु बाहरसे वैष्णव सदाचार सम्पन्न होते हैं और अपनेको चारों सम्प्रदयके अन्तर्गत बतलाते हैं। उनको श्रीचैतन्यदेवका आश्रित नहीं कहा जा सकता है। वे भले ही अपनेको श्रीचैतन्यमहाप्रभुका सेवक अभिमान करें, परन्तु वास्तवमें कर्त्ताभजा, अतिबाड़ी आदि उप या अपसम्प्रदायोंके ही अन्तर्भुक्त व्यक्ति हैं। जो लोग अपनेको वैष्णवोंके अनुगत नहीं मानते अर्थात् साम्प्रदायिक आचारनिष्ठ नहीं होते अर्थात् दूसरे शब्दोंमें असत् सम्प्रदायी हैं, वे यदि किसी स्वार्थ सिद्धिके लिये ऊपरसे दिखलानेके लिये 'मेरे गौर' 'मेरे चैतन्य' आदि शब्दोंका उच्चारणमात्र तो करते हैं, परन्तु भीतर-ही-भीतर परमार्थ से विद्वेष करते हैं, उनके प्रति सत् साम्प्रदायिक वैष्णवोंकी कोई सहानुभूति नहीं होती। वे लोग श्रीचैतन्य महाप्रभुकी जो देखावटी जै-जैकार दिया करते हैं तथा अपनेको श्रीचैतन्य महाप्रभुजीका अनुगामी बतलाते हैं, वैसा भाव तो अघासुर और बकासुरमें भी देखा जा सकता है। परन्तु श्रीचैतन्य महाप्रभुके निष्कपट सेवक उनकी कपटता पहचान कर उन्हें 'भ्रान्त-पथ-गामी' की संज्ञा देते हैं। फिर भी उपरोक्त चार-श्रेणियोंके वैष्णवगण उनकी प्रशंसा ही करते हैं, क्योंकि वे उपास्य श्रीचैतन्यदेवकी प्रकाश्यरूपमें विरोधिता तो नहीं करते।

गृहस्थ वैष्णव, आचार्य वैष्णव, गृहत्यागी निष्किंचन गोस्वामी वैष्णव, तथा स्मार्त - आचारोंमें स्थित मिश्र-वैष्णव-धर्मावलम्बी—ये चारों प्रकारके लोग अपनी-अपनी विशेषताको बनाये रख कर भी एक-दूसरेका विरोध नहीं करते, बल्कि एक स्वार्थ-विशिष्ट होते हैं अर्थात् इन सबका किसी न किसी प्रकारसे एक ही मुख्य उद्देश्य होता है—भगवान्की सेवा करना।

इन चार प्रकारके लोगोंमेंसे यदि किसीकी स्वार्थ-हानि होती हो अथवा किसीके कनक-कामिनी और प्रतिष्ठाकी प्राप्तिमें बाधा पहुँच रही हो तो वे मुख्य उद्देश्य (हरि-सेवा) के विरोधी हो पड़ते हैं। वैसा

गृहविवाद अनभिज्ञ समाजमें संकीर्ण साम्प्रदायिकता की सृष्टि करता है। असत्य वस्तुके उपासक सम्प्रदाय बाहर और भीतरसे दो-रंगी नीति अपनानेके लिये बाध्य होते हैं। जो लोग संकीर्णताको साम्प्रदायिकता कहते हैं, वे असत् सम्प्रदायके चित्रको ही आदर्श मानते हैं। परन्तु यह उनकी मत्सरताका ही फल है। उनके ऐसा माननेसे ही सत्य कभी भी झूठा नहीं हो सकता। सत् सम्प्रदायोंकी दृढ़ता और सत्यता अक्षुण्ण बनी रहती है। जो लोग इस विषयमें जीवनभर आलोचना नहीं करते, वे पक्षपात दोषसे दूषित होकर सत्सम्प्रदायकी निन्दा करने लगते हैं। और असत्सम्प्रदायका पक्ष ग्रहण करके बाह्य समन्वय वादी हो पड़ते हैं। प्राकृत-धर्म यद्यपि अप्राकृत-धर्म का पुत्र है, तथापि वह पुत्र त्याज्य पुत्र है। अप्राकृत का अप्राकृत संतान अप्राकृतका ध्वंश करनेके लिये तर्क-पथका अवलम्बन नहीं करता। गौड़ देशवासी बंगभाषाभिज्ञ साधुजन ! आपलोगोंके गन्तव्य मार्ग में अगणित काँटे बिछाये गये हैं और आगे और भी बिछाये जायेंगे। आप लोग त्रिदण्डिचरणके निम्नलिखित श्लोक पर विचार करेंगे—

> कालः कलिर्बलिन इन्द्रियवैरिवर्गाः,
> श्रीभक्तिमार्ग इह कण्टककोटि रुद्धः।
> हा हा क्व यामि विकलः किमहं करोमि,
> चैतन्यचन्द्र यदि नाद्य कृपां करोषि॥

आज उपर्युक्त चार श्रेणियोंमेंसे कुछ लोग कनक, कामिनी और प्रतिष्ठा लाभकी आशासे जड़विद्या निपुणों और धन-कुबेरोंकी सहायतासे श्रीचैतन्य महाप्रभुके जन्मस्थान श्रीधाम मायापुर (नवद्वीप) की स्थितिके सम्बन्धमें लोगोंमें भ्रान्त धारणाका प्रचार कर रहे हैं। यहीं तक नहीं, वे श्रीचैतन्य महाप्रभु के प्रचार्य विषयको भी दुषित कर रहे हैं। परन्तु श्रीगौरसुन्दरके प्रचार्य - विषयमें श्रीकृष्ण द्वैपायन वेदव्यास द्वारा रचित श्रीमद्भागवत प्रमाण-स्वरूप हैं। परन्तु आज उन श्रीमद्भागवतकी भी विकृत और भक्तिविरोधी व्याख्या की जारही है। ऐसी दशामें बड़ी सावधानी एवं दृढ़ताकी आवश्यकता है।

श्रीचैतन्यदेवके निष्कपट सम्प्रदाय ! आप लोग अगणित कण्टकोंसे भरे वैष्णव-विद्वेषी साहित्यिक समाज, वैष्णव विद्वेषिणी धनवती सभाके दुर्बल अभियानका कदापि समादर न करेंगे। दृढ़तापूर्वक सत्सम्प्रदायके कल्याणके लिये चेष्टा करेंगे। वह चेष्टा है—श्रीभक्ति रसामृतसिन्धुका पाठ करना और उसके उपदेशोंका पालन करना। उसका उपदेश है— "लौकिकी वैदिकी वापि या क्रिया क्रियते मुने। हरि सेवानुकूलैव सा कार्या भक्तिमिच्छता॥" श्रीचैतन्यदेवके सभी स्तावकगण तथा उनके आश्रित चारों श्रेणियोंके सभी वैष्णवगण एक स्वरसे अन्याभिलाष और ज्ञान-कर्मादिसे अनावृत अनुकूल भावसे कृष्ण-सेवाके पक्षपाती हैं। वे मायिक जगतके प्रभुत्व का आदर नहीं करते। बल्कि अपनी नित्यस्वरूपोपलब्धिके माध्यमसे समस्त जागतिक क्रियाओंसे—लौकिक (अवैदिक) तथा वैदिक समस्त प्रकारके अनुष्ठानोंसे हरिसेवा ही करते हैं। ऐसे वैष्णव सम्प्रदायमें अवस्थित कोई व्यक्ति यदि चारों श्रेणियों के वैष्णवोंमें परस्पर विवाद रूप अग्निको प्रज्ज्वलित करनेके लिये इन्धन संग्रह करता है, तो हम ऐसा समझेंगे कि वह व्यक्ति श्रीचैतन्यदेवकी अमन्दोदया को अभी तक पा नहीं सका है।

—जगद्गुरु ॐविष्णुपाद श्रीलसरस्वती ठाकुर

प्रश्नोत्तर

गौड़ीय पूर्वाचार्योंका वैशिष्ट्य

(३४) चार सात्वत वैष्णव - सम्प्रदायके चार आचार्य कौन कौन हैं ?

"श्रीरामानुज, श्रीमध्व, श्रीविष्णुस्वामी और श्रीनिम्बादित्य—ये चार वैष्णव आचार्य हैं । और जितने भी वैष्णवाचार्य हुए हैं, वे इन्हीं चारों आचार्योंमें से किसी-न-किसी एक आचार्यके अनुगत हैं । श्रीरामानुज विशिष्टाद्वैतवादी हैं, श्रीमध्व शुद्धद्वैतवादी हैं, श्रीविष्णुस्वामी शुद्धाद्वैतवादी हैं तथा श्रीनिम्बादित्य द्वैताद्वैतवादी हैं ।"

—'श्रीनिम्बादित्याचार्य', स० तो० ७।७

(३५) श्रीगौर-सुन्दरने श्रीनित्यानन्द, श्रीअद्वैत, श्रीरूप, श्रीसनातन और श्रीजीव आदि गोस्वामियों-के ऊपर कौन-कौनसा कार्यका भार दिया था ?

"श्रीगौर सुन्दरने श्रीनित्यानन्द-प्रभु और श्री-अद्वैत-प्रभुको श्रीनाम-माहात्म्य प्रचार करनेकी आज्ञा और शक्ति प्रदान की थी । श्रीसनातन गोस्वामीको वैधी - भक्तिका तथा वैधीभक्ति और रागभक्तिके पारस्परिक सम्बन्धका प्रचार करनेकी आज्ञा दी थी; इसके अतिरिक्त गोकुलके प्रकटाप्रकट सम्बन्धका निर्णय करनेके लिये भी सनातन गोस्वामीको आज्ञा दी थी । श्रीरूप गोस्वामीको उन्होंने रस-तत्त्व प्रकाश करनेकी आज्ञा और शक्ति दी थी । श्रीनित्यानन्द-प्रभु और श्रीसनातन गोस्वामीके द्वारा श्रीजीव गोस्वामीको सम्बन्ध, अभिधेय और प्रयोजनतत्त्व निर्णय करनेकी शक्ति दी थी ।

—जैव-धर्म, ३९ अध्याय

(३६) श्रीस्वरूपदामोदर प्रभुके ऊपर क्या भार था ?

"श्रीमन्महाप्रभुने श्रीस्वरूप दामोदरको रसमयी उपासनाका प्रचार करनेके लिये आज्ञा दी थी । श्रीमन्महाप्रभुकी इस आज्ञाकी पूर्त्तिके लिये उन्होंने दो भागोंमें कड़चाओं (संस्कृतके फुटकर श्लोक, जिन्हें वे समय - समय पर श्रीमन्महाप्रभुजीके उद्‌गारों, भावों तथा उपदेशोंको हृदयङ्गमकर लिख डालते थे ।) की रचना की है । कड़चाके एक भागमें उन्होंने रसोपासनाकी अन्त:पद्धतिका तथा दूसरे भागमें बहि:-पद्धतिको लिखा । उनमेंसे अन्त:पद्धति—श्रीरघुनाथ दास गोस्वामीको कण्ठस्थ करवायी थी जो श्रीरघुनाथदास गोस्वामीके ग्रन्थोंमें पर्यवसित हुई है । बहि:-पद्धति श्रीमद्‌वक्रेश्वर गोस्वामीको अर्पण की थी ।"

— जैवधर्म, ३९ अध्याय

(३७) श्रीराय रामानन्दके प्रति रस-विस्तारके लिये दिये गये भारको किसने सम्पन्न किया है ?

"श्रीमन्महाप्रभुजीने रायरामानन्दको रसका विस्तार करनेके लिये जो भार दिया था, उसे उन्होंने श्रीरूपगोस्वामीके द्वारा ही सम्पन्न करवाया है ।"

—जैव-धर्म, अध्याय ३९

(३८) गौड़ीय आचार्योंके सेनापति कौन हैं ?

"श्रीसनातन गोस्वामी ही हमारे गौड़ीय वैष्णवों के सेनापति हैं ।

—तात्पर्यानुवाद बृ० भा० २।१।१४

(३९) वैष्णव - जगत श्रीसनातन गोस्वामीका चिरऋणी क्यों है ?

श्रीश्रीमन्महाप्रभुने श्रीसनातन गोस्वामीके अंदर सम्पूर्ण शक्तिका संचार करके श्रीवृन्दावनके लुप्त तीर्थों का उद्धार करनेके लिये उन्हें वाराणसीसे व्रजमण्डलमें भेजा था । सनातन गोस्वामी महाप्रभुजीकी शक्ति-संचारसे प्रेमानन्दमें विभोर होकर वृन्दावनमें आये तथा दूसरे-दूसरे भक्तोंके साथ मिलकर लुप्ततीर्थोंका उद्धार किया, श्रीविग्रहोंको प्रकट किया तथा श्रीमन्-महाप्रभु के उपदेशानुसार भगवद्भक्ति-प्रतिपाद्य अनेकानेक ग्रन्थोंकी रचना की । पाठकों ! श्रीसनातन गोस्वामीके निकट सम्पूर्ण वैष्णव जगत चिरऋणी है और रहेगा ।"

—श्रीसनातन गोस्वामी प्रभु, स० तो० २।७

(४०) श्रीरूप गोस्वामीका आचार-प्रचार क्या है?

"श्रीरूप गोस्वामीने जिस दिन श्रीनवद्वीपचन्द्र श्रीश्रीशचीनन्दन महाप्रभुजीका नाम सुना, उसी दिन से वे श्रीमन्महाप्रभुजीके दर्शनोंके लिये पागलसे हो गये । स्वभक्त - तत्त्वज्ञ सर्वान्तर्यामी श्रीचैतन्यदेव श्रीरूपके अन्तरकी बात जानकर श्रीवृन्दावन-गमनके समय रास्तेमें रामकेली ग्राममें उपस्थित होकर श्रीरूप को दर्शन दिया । श्रीमन्महाप्रभुका दर्शनकरके श्रीरूप अपना जीवन सफल मानकर आनन्द सागरमें निमग्न हो गये । नित्यमुक्त कृष्णभक्तोंको मायादेवी कभी भी बाँध नहीं सकती । थोड़े ही दिनोंमें श्रीरूप विषय - सुखको लात मार करके महावैराग्यपूर्वक प्रयाग-तीर्थमें श्रीमन्महाप्रभुके चरणप्रान्तमें अपनेको समर्पित कर दिया । महाप्रभुजीने कृपापूर्वक श्रीरूपके अन्दर शक्ति-संचार कर रसतत्त्वका उपदेश देकर श्रीवृन्दावनके लुप्त तीर्थोंका उद्धार करनेके लिये वहाँ भेजा । श्रीमन्महाप्रभुकी आज्ञाको शिरोधार्य करके श्रीरूप वृन्दावन पहुँचे तथा वहाँ दूसरे-दूसरे भक्तोंके साथ मिल कर उन्होने व्रजमण्डलके लुप्त तीर्थोंका उद्धार किया तथा श्रीमूर्तिकी सेवा प्रकट की । तदनन्तर उन्होंने पाप-तापाच्छन्न अखिल जीवोंके कल्याणकरनेके लिये श्रीमन्महाप्रभुके निकट उपदेशके रूपमें प्राप्त भगवद्भक्ति-तत्त्वसे परिपूर्ण भक्तिरसामृतसिन्धु, लघु-भागवतामृत, हंसदूत, उद्धवसंदेश, कृष्ण-जन्मतिथि-विधि, लघु और बृहद् गणोद्देशदीपिका, स्तवमाला, विदग्धमाधव, ललितमाधव, दानकेलिकौमुदी, उज्ज्वलनीलमणि, प्रयुक्ताख्य (आख्यात) चन्द्रिका, मथुरा -महिमा, पद्यावली, नाटक-चन्द्रिका आदि अनेक ग्रन्थोंकी रचनाएँ की । पतित-पावन गौराङ्गदेवने रूप-सनातन द्वारा—दैन्य, स्वरूपदामोदर द्वारा-निरपेक्षता, ब्रह्म हरिदासद्वारा—सहिष्णुता और राय रामानन्द द्वारा—जितेन्द्रियता-धर्मका प्रचार करवाया है । किसी - किसी भक्तोंने अपनी लेखनीमें व्यक्त किया है कि श्रीमहाप्रभुने श्रीरूपके द्वारा लीला-तत्त्वका, श्रीसनातनके द्वारा भक्तितत्त्वका, ब्रह्महरिदासके द्वारा नाम-तत्त्वका और राय रामानन्दके द्वारा प्रेम-तत्त्वका प्रचार करवाया है । जैसा भी हो इस विषयमें हमें कुछ भी आपत्ति नहीं है । परन्तु खेदका विषय यह है कि नेड़ा-नेड़ी,

बाउल, कर्त्ताभजा, रसिक-शेखर, सहजिया आदि कुसम्प्रदायके लोग झूठ-मूठ इन महा मार्थोंको अपने अपने मतका आचार्य बतलाते और प्रचार करते हैं जिससे जनसाधारणके हृदयमें श्रीमन्महाप्रभुद्वारा प्रचारित परम-पवित्र वैष्णव धर्मके प्रति क्रमशः भ्रम और अश्रद्धा बढ़ रही है।"

—श्रीरूपगोस्वामी प्रभु, स० तो० २।८

(४१) श्रीरूपगोस्वामीके सिद्धान्त क्या सर्वत्र आदरणीय हैं ?

"श्रीरूप गोस्वामीने सर्वत्र ही शास्त्र-प्रमाण देकर सुयुक्तियोंके साथ अपने सिद्धान्तोंकी प्रतिष्ठा की है। भिन्न-भिन्न सम्प्रदायके लोगोंको श्रीरूप गोस्वामीके कुछ सिद्धान्त ठीक नहीं जँचते। फिर भी जो लोग शुद्धतत्त्वको प्राप्त करनेके उद्देश्यसे उपासना-पद्धतिको अपनाते हैं, इनको श्रीरूप गोस्वामीके सिद्धान्त बड़े अच्छे लगते हैं।"

—श्रीलघुभागवतामृत-समालोचना, स०तो० ११।२

(४२) श्रीरघुनाथदास गोस्वामी प्रभुको श्रीरूपानुग क्यों कहा जाता है ?

शचीनन्दन गौरहरिने स्वयं भगवान् होकर भी संन्यास वेश ग्रहण करके नीलाचलपुरीमें स्वरूप-दामोदर तथा राय रामानन्द आदि प्रेमी भक्तोंको राधाभावमें विभावित होकर प्रेमके जिस निगूढ़ तत्त्व की शिक्षा दी थी तथा उन भक्तोंके साथ जिस प्रेमरस-निर्यासका आस्वादन किया था, उसी निगूढ़ तत्त्वोंकी शिक्षा देकर श्रीरघुनाथदासको श्रीरूप गोस्वामीके पास वृन्दावनमें भेज दिया। श्रीमन्महाप्रभुकी आज्ञानुसार श्रीदास गोस्वामीने व्रजमें उपस्थित होकर श्रीरूपके साथ उनके आनुगत्यमें श्रीराधाकृष्णका भजन किया है तथा "मनःशिक्षा" के श्लोकोंका जीव कल्याणके लिये प्रकाश किया है।"

—श्रीमनःशिक्षा ४वाँ श्लोक

(४३) श्रीरघुनाथ भट्ट गोस्वामी प्रभुके प्रति महा प्रभुने कौनसा भार अर्पण किया था ?

"श्रीभागवत-माहात्म्यका प्रचार करनेका भार ही श्रीरघुनाथ महागोस्वामीके ऊपर अर्पित था।"

—जैव-धर्म, ३६ अध्याय

(४४) श्रीगोपाल भट्ट गोस्वामीके ऊपर क्या भार दिया गया था ?

"शुद्ध शृङ्गार-रसको कोई विकृत न कर सके तथा वैधी भक्तिके प्रति कोई अकारण ही अश्रद्धा न करे—इसकी व्यवस्था करनेका भार श्रीगोपाल-भट्ट गोस्वामी को दिया गया था।"

—जैव-धर्म, अध्याय ३१

(४५) श्रीप्रबोधानन्द सरस्वतीके ऊपर क्या भार था ?

व्रजरसानुराग-मार्ग ही सर्वश्रेष्ठ उपासना-मार्ग यही जगतको बतलानेका भार श्रीप्रबोधानन्द सरस्वती को अर्पण किया गया था।"

—जैव-धर्म, अध्याय ३६

(४६) सार्वभौम भट्टाचार्यके ऊपर कौन सा भार था ?

"विशुद्ध तत्त्वका प्रचार करनेका भार सार्वभौमके ऊपर था। उन्होंने वह भार अपने किसी शिष्य द्वारा श्रीजीवगोस्वामी पर सौंपा था।"

—जैव-धर्म, अध्यात ३६

(क्रमशः)

—जगद्गुरु श्रीभक्ति विनोद ठाकुर

ईश्वरके सकारत्व और निराकारत्वके सम्बन्धमें विभिन्न मतवाद

आजकल पृथ्वी भरमें चार धर्म ही प्रधान रूपमें परिलक्षित होते हैं। ये चार हैं—हिन्दू, बौद्ध, इसाई और मुसलमान। इनमेंसे हिन्दू-धर्मका मूलतत्त्व सनातन वैदिक सनातन-धर्म ही माना जाता है। पंचोपासकोंके मतानुसार यह वैदिक-धर्म प्रधानतः वैष्णव, शैव, शाक्त, सौर और गाणपत्य—इन पाँच रूपोंमें कल्पित किया गया है। एक ही अखण्ड वैदिक उपासनाके अन्तर्गत विभिन्न प्रकारके रुचि-विशिष्ट प्रवृतिमार्गके उसापकोंकी सुविधाके लिये विभिन्न पथ मात्र दिखलाये गये हैं। आदि वैदिक युगमें (सत्युगमें) केवल एक ही सनातन पद्धति थी। उस पद्धतिमें केवल मात्र श्रीविष्णुकी उपासनाको ही लक्ष्य किया जाता है। उस समय केवल एक ही वर्ण था, जिसका नाम था—हंसवर्ण। तत्कालीन शुद्ध निष्काम ब्राह्मणगण ऐकान्तिक विष्णुपरायण थे। वे लोग अन्यान्य देव-देवियोंकी एक-एक स्वतन्त्र ईश्वर या स्वतन्त्र शक्तिके रूपसे कदापि उपासना नहीं करते थे।

तदनन्तर त्रेता और द्वापर-युगमें सत्ययुगकालीन ऐकान्तिक विष्णुनिष्ठा क्रमशः विकृत होनेके कारण विशुद्ध एवं ऐकान्तिक विष्णु-उपासना-पद्धति भी क्रमशः अधितर विकृत होती गयी। लोगोंमें क्रमशः अधिकतर कामना-वासनाका प्रवेश होनेके कारण वह उपासना पद्धति अब नाना देव-देवियोंकी पूजा-पद्धतियोंके रूपमें रूपान्तरित हुई। साथ ही उसी अनुपातसे स्वभाव, गुण और क्रियाओंके अनुसार पूर्वोक्त एक हंसवर्ण ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और अन्त्यज आदि असंख्य वर्णों और श्रेणियोंमें विभक्त होने लगा। इनमेंसे जिन लोगोंने वेदको स्वीकार नहीं किया अथवा वेदके विचारोंको नहीं माना—वे लोग समाजमें नास्तिक-सम्प्रदाय माने गये और जिन लोगोंने मौखिक रूपमें वेदोंको मानकर भी वेदोंके प्रतिपाद्य विषय सच्चिदानन्द-विग्रह या अखिलेश्वर श्रीकृष्ण-विग्रह और तदीय अन्यान्य चिन्मय वैभव-विग्रहोंके स्वरूपोंको स्वीकार न कर एक पृथक निराकार, निर्विशेष मतवादकी स्थापना करनेकी चेष्टा की, वे भी प्रच्छन्न-नास्तिक-सम्प्रदाय कहलाये। ये प्रच्छन्न-नास्तिक सम्प्रदाय ही आजकल संसारभरमें असंख्य मतवादोंके रूपमें सर्वत्र ही छाये हुए हैं। विशेषतः पाश्चात्य देशोंमें इन विकृत मतवादोंका प्रचुर प्रचलन देखा जाता है। उन मतवादोंकी विस्तृत आलोचना करना यहाँ संभव नहीं।

भारतीय दर्शनोंमें छः दर्शन अधिक प्रसिद्ध हुए हैं। इन छःहों दर्शनोंमें महामुनि कृष्णद्वैपायन वेदव्यास द्वारा प्रवर्तित 'वेदान्त दर्शन' ही एकमात्र वैदिक आस्तिक-दर्शन है। उक्त वेदान्त-दर्शनके ऊपर अनेक कृत्रिम भाष्य लिखे गये हैं जिनमेंसे निर्विशेष-वाद समर्थक भाष्य आदि, सारग्राही महात्माओं एवं

सज्जन पुरुषोंके लिये आदरणीय नहीं। साधु समाजने उनकी सर्वथा उपेक्षा की है, उनके निर्विशेष विचारोंकी शास्त्रीय प्रमाणों एवं सुयुक्तियोंके बल पर धज्जी-धज्जी उड़ा कर सदाके लिये उसकी हेयता प्रमाणित की है। संसारके सभी धर्म मूलतः सनातन वैदिक-धर्मके विकृत सोपान और प्रतिफलन विशेष हैं। धर्मका मूल तत्त्व कदापि कोई कल्पित भाव या वस्तु नहीं है, उसकी नित्य स्थितिको हम कदापि अस्वीकार नहीं कर सकते। यदि हम उस मूल तत्त्वकी नित्य-स्थिति स्वीकार करते हैं, तो प्राकृत कल्पित साकार और निराकारको लेकर व्यर्थ ही वाद-विवाद करनेसे कोई लाभ नहीं है। ऐसी दशामें श्रुति और महाजनों द्वारा प्रदर्शित पथसे ही हम वास्तविक तथ्यकी उपलब्धि कर सकते हैं।

कतिपय धार्मिक मान्यताओंकी आलोचना

वर्तमान युगमें बंगालके राजा राममोहन राय द्वारा प्रचारित धर्मको "ब्राह्म-धर्म" कहा जाता है। उनके मतानुसार ईश्वर बिलकुल निराकार हैं। परन्तु उनकी उपासना पद्धतिमें निराकार ब्रह्मको कृपा आदि गुणोंसे युक्त स्वीकार किया गया है। इस प्रकार निराकार पदार्थका सविशेषत्व स्वीकार करनेसे वह वास्तवमें सगुण ही हो गया या नहीं—यह विवेचनीय है। अतएव ईश्वर या ब्रह्म—सगुण हैं, इस विषयमें तनिक भी संदेह नहीं है।

महात्मा यीशुखृष्ट द्वारा प्रवर्त्तित धर्मका नाम-ईसाई-धर्म है। इस मतके अनुसार ईश्वर निराकार हैं। परन्तु आश्चर्य है, ईसाइयोंके मूल धर्म-ग्रन्थ—बाईबिलमें God का अस्तित्त्व स्वीकृत है; इसमें ईश्वरके Throne (सिंहासन) का भी उल्लेख है। उनका ईश्वर इस Throne के ऊपर बैठता है तथा उनकी अगल-बगलमें दोनों ओर Holy Ghost अर्थात् पवित्र-आत्माएँ विराजमान रहती हैं। वह ईश्वर जीविका निर्वाहके लिये सबकी दाल-रोटीकी व्यवस्था करता है—वही सब कुछ करता है; अतएव वह निष्क्रिय नहीं—सक्रिय है। इससे यह स्पष्ट प्रमाणित होता है कि ईसाई धर्ममें भी ईश्वरका भी निराकारके अतिरिक्त कोई स्वरूप भी है। यदि उनका रूप या आकार नहीं है, तब उनके बैठनेके लिये सिंहासन Throne का ही आवश्यकता क्या है? और निराकार ईश्वर के अगल - बगलमें बैठने वाले पार्षदों (पवित्र आत्माओं) की बात कैसे ठीक हो सकती है ? God के समीप जब प्रार्थनाकी जाती है, वहाँ उनका प्रतीक भी देखा जाता है। अतएव भले ही ईश्वरके रूपको वर्तमान अवस्थामें न देखा जा सके, परन्तु उनका रूप है—इस बातको अस्वीकार करनेका कोई कारण या प्रमाण नहीं। उनको किसी विशेष अवस्थामें अवश्य ही देखा जा सकता है।

मुसलमानोंके शास्त्र कुरानादिमें भी ईश्वरके निराकार अथच सगुण सविशेष स्वरूपका इङ्गित देखा जाता है। उनके किसी दूसरे स्वरूपका भी इङ्गित देखा जाता है। उनके धर्म-याजक मौलवियोंके प्रार्थना शास्त्रमें 'बेहेस्त', 'आरस्', 'लामोकाम' आदि धामों (अल्ला या खुदाके निवासका विशेष स्थान) का भी उल्लेख है। सुनते हैं, वे सभी धामसमूह जड़से अतीत चिन्मय हैं। वहाँके मालिक सर्वग, सर्वज्ञ, अनन्त और विभुस्वरूप होते हैं। जो साधन

में सिद्ध हो जाते हैं, वे वेहेस्तमें परिच्छिन्न देह धारण करते हैं। ये भी चिन्मय और नित्य किशोर स्वरूपवाले होते हैं। वहाँ पर निरवच्छिन्न सुखकी बात भी सुनी जाती है। हिन्दूओंके स्वर्गकी तरह ही उनका वेहिस्त है—ऐसा जान पड़ता है। स्वर्गसे पुन: पृथ्वीलोक आदिमें लौटनेका वर्णन मिलता है; परन्तु वेहेस्तमें जाकर फिर लौटना नहीं पड़ता। 'ला-मोकाम'—निर्विशेष धाम है। 'आरस'—एक उच्चतर धाम है। यहाँ पर उनके ईश्वरका दरवार होता है। वहाँ पर चार चीजें सदा-सर्वदा विद्यमान रहती हैं। वे चार चीजें हैं, आरस, कुर्सी, लक और कलम। आरसके ऊपर कुर्सी बैठायी जाती है। आरस-एक प्रकारका वेश-कीमती आसन है। दरबारके समय खुदाताल्ला आर्सके ऊपर कुर्सी पर बैठ कर इन्साफ करते है। लक—स्लेटकी तरह कोई चीज है, जिस पर कलम द्वारा लिखा जाता है। खुदाताल्ला यहीं कुरान लिखते हैं। दरबारमें खुदाके पार्षदगण भी होते हैं। नित्य सिद्ध पार्षदोंको 'फिरिस्ता' कहते हैं। इसके अतिरिक्त और भी एक धाम है; इस धाममें हजारों पर्दोंके भीतर उनके खुदा विराजमान रहते हैं। वहाँ वे किस रूपमें, किस स्वरूपमें होते हैं, इसका कोई उल्लेख नहीं देखा जाता। साधन-सिद्धों या नित्यसिद्ध फिरिस्ताओंको भी वहाँ जानेका अधिकार नहीं है। कहते हैं, हजरत महम्मद एक समय हजारों पर्दोंके भीतर जाकर खुदातल्लाका दर्शन पाये थे; खुदासे उनकी बार्तालाप भी हुई थी। कहते हैं, हजरत मुसाने भी उनका दर्शन किया था। इन दोनोंने किस रूप या आकारका दर्शन पाया था, इसका कोई वर्णन नहीं मिलता। यह दर्शन किसी निराकार ज्योतिका दर्शन नहीं है। हजरत मुसाका हृदय निराकार भावनासे अतृप्त था। पीछेसे किसी पहाड़ पर वे ईश्वरका मनोहर रूप दर्शन करके मूच्छित हो पड़े थे। इस दिखलायी पड़नेवाले ईश्वर के सम्बन्धमें उनके धर्म-पुस्तकोंमें कोई वर्णन नहीं मिलता। इससे यह सहज ही अनुमान किया जा सकता है कि इस्लाम-शास्त्रोंमें ज्योति-दर्शनके अतिरिक्त भी कोई और भी दर्शन है। ईसाई धर्मके ग्रन्थोंमें भी Throne या सिंहासन एवं पार्षद आदि के उल्लेखसे ईश्वरका साकार स्वरूप ही प्रामाणित होता है।

सनातन-धर्मके शास्त्रोंका विचार

हमारे सनातन धर्ममें श्रौत शास्त्र ही एकमात्र प्रमाण हैं। 'शास्त्रयोनित्वात्', 'श्रुतेस्तु शब्दमूलत्वात', आदि वेदान्तके सूत्रोंके अनुसार परब्रह्मका तत्त्व निर्णयके सम्बन्धमें श्रुति ही एकमात्र प्रमाण है। श्री शंकराचार्यने कहा है—'न हि वेदवाक्यानां कस्यचिदनर्थवत्त्वमिति युक्तं प्रतिपत्तुं प्रमाणत्वाविशेषात्।" वेदवाक्योंमें से कोई वाक्य अर्थयुक्त है, कोई वाक्य निरर्थक है—ऐसा समझना उपयुक्त नहीं है। परन्तु श्रीशंकराचार्यको वेदका जो अंश या मन्त्र उनके निर्विशेष विचारमय भाष्यके अनुकूल जान पड़ा, उसे उन्होंने महावाक्य माना तथा सविशेष पर असंख्य वाक्योंको, यहाँ तक कि प्रणवरूपी ऊँकार तक को भी उन्होंने महावाक्य नहीं स्वीकार किया। क्योंकि ये सब वाक्य या मंत्रसमूह उनके भाष्यके उद्देश्यके अनुकूल नहीं दिख पड़े। यह कितने बड़े आश्चर्यकी बात है। श्रील जीव गोस्वामीने सर्वसम्वादिनी नामक ग्रन्थमें परब्रह्मके रूप आदिके

सम्बन्धमें कतिपय श्रुति वचनोंको उद्धृत कर उसकी व्याख्या द्वारा इस विषयके समाधानकी चेष्टा की है। उदाहरण स्वरूप, मुण्डकोपनिषद् (२।२।८) के—'भिद्यते हृदयग्रंथिश्छिद्यन्ते सर्व-संशयाः। क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन् दृष्टे परावरे।" इस मंत्रमें ब्रह्मके सविशेष दर्शनकी बात कही गयी है। वेदमें भी सैकड़ों स्थलों पर ब्रह्मका सविशेषत्व प्रतिपादित है—'तद्विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः।' (सामवेद), 'श्यामाच्छबलं प्रपद्ये, शबलात् श्यामं प्रपद्ये' (वेद और छान्दोग्यश्रुति), 'कृष्णो ब्रह्मैव शाश्वतम्' (कृष्णोपनिषद्) आदि जाज्वल्य प्रमाण स्वरूप हैं।

(क्रमशः)

—त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिप्रापन दामोदर महाराज

'सहजियावाद'–गोस्वामीगणका अनुमोदित मत नहीं है

[३ पौष, १९ दिसम्बर, वृहस्पतिवारको श्रीश्रील जीव गोस्वामीचरणकी तिरोभाव-तिथि-पूजाके उपलक्षमें त्रिदण्डी-स्वामी श्रीमद्भक्तिवेदान्त स्वामी महाराजद्वारा प्रदत्त अभिभाषण]

तच्छ्रद्दधाना मुनयो ज्ञानवैराग्य युक्तया।
पश्यन्त्यात्मनि चात्मानं भक्त्या श्रुत-गृहीतया॥

(श्रीमद्भागवत १।२।१२)

अर्थात् श्रद्धालु मुनिजन भागवत आदि श्रवणसे उदित ज्ञान-वैराग्ययुक्त भक्ति द्वारा ही अपने विशुद्ध अन्तःकरणमें परतत्त्व-वस्तुका दर्शन करते हैं। यहाँ पर ज्ञान और वैराग्ययुक्त भक्तिके द्वारा ही भगवद्दर्शनकी बात कही गयी है। तात्पर्य यह कि शुद्धाभक्ति उदित होने पर भक्तमें स्वाभाविकरूपमें भगवत्-ज्ञान एवं कृष्णेतर विषयोंके प्रति वैराग्य—ये दोनों लक्षण अवश्यमेव परिलक्षित होते हैं। श्रील-जीव गोस्वामीचरणने 'क्रम-सन्दर्भ' टीकामें लिखा "तदेवं श्रुतगृहीतया मुनयः श्रद्धाना इति पदत्रयेण तस्या एव भक्तेर्दौर्लभ्यं दर्शितं।" अर्थात् भगवद्-भक्ति कोई सुलभ मानसिक वृत्ति नहीं है, वरन् साधारण लोगोंके लिये वह अत्यन्त सुदुर्लभ है। श्रीलरूप गोस्वामी भी श्रीभक्तिरसामृतसिन्धुके 'भक्तिकी संज्ञा'-प्रकरणमें भक्तिकी सुदुर्लभता बतलाते हुए कहते हैं—"मोक्षलघुताकृत् सुदुर्लभा।" शुद्धभक्तजन मोक्षपद या कैवल्य सुखको अत्यन्त तुच्छ समझते हैं। श्रीप्रबोधानन्द सरस्वती चरणने भी कहा है—'कैवल्यं नरकायते त्रिदशपूराकाश पुष्पायते।"

ऐसी सुदुर्लभ अप्राकृत भक्तिके सम्बन्धमें जब अनभिज्ञ व्यक्ति यह कहते हुए प्रचार करते हैं कि 'भक्ति और कुछ नहीं, केवल Sex-Religion अर्थात् "यौन-धर्म" मात्र है' तो उससे शुद्धभक्त समाजको

जो कितना दुःख होता है, वह वर्णनातीत है। सुनते हैं, कुछ दिन पहले सभी धर्मोंको एक माननेवाले सर्वधर्म-समन्वयवादी कोई साधक अथवा कल्पित अवतार भागवतधर्मको साधना करते हुए (?) सखी वेश (स्त्री-वेश) में रहते थे। इसी प्रकार भागवत-धर्मके नामपर नाना-प्रकारके अपवाद और प्राकृत-विश्रृङ्खलता देखी और सुनी जा रही है। ऐसा होने का कारण यह है आजकल भागवतधर्म या श्रीचैतन्य महाप्रभु द्वारा प्रचारित 'प्रेमधर्मका श्रीमद्भागवतके निर्देशानुसार 'श्रुत-गृहीतया' अर्थात सद्गुरुके निकट विधिपूर्वक श्रवण करके आचरण नहीं किया जाता।

श्रील जीव गोस्वामीने अपने गुरु-वर्गद्वारा परम्परा-क्रमसे स्वीकृत भागवतके दार्शनिक-विचारों तथा उसके सर्वोत्कर्षत्वका प्रतिपादन किया है। उन्होंने "श्रुत-गृहीतया" के विषयमें जो निर्देश दिया है, उसके आचार और प्रचारके द्वारा ही श्रीमन्महाप्रभुद्वारा प्रवर्त्तित अमल भागवत धर्म सुरक्षित रह सकता है। उनका निर्देश इस प्रकार है—"सद्गुरोः साकाशात् वेदान्ताद्यखिल शास्त्रार्थ विचार श्रवण द्वारा यद्विदित्वावश्यक परम कर्तव्यत्वेन ज्ञायते" अर्थात् सद्गुरुके निकट वेद-वेदान्तादि अखिल शास्त्रोंका सारार्थ-विचार श्रवण द्वारा जो परम कर्तव्य निर्द्धारित होता है, उसीको भक्तिमार्ग कहते हैं। इसके अतिरिक्त मनमाने आचरण द्वारा कृष्णभक्तिके नामपर केवल जगज्जञ्जालरूप उत्पातकी ही वृद्धि होती है।

श्रील रूप गोस्वामीने भी ऐसा कहा है कि—श्रुति-स्मृति, नारद पंचरात्र एवं पुराणादि शास्त्रोंके द्वारा प्रतिपादित विचारोंकी अवहेलना कर भक्तिके नाम पर जो छल-धर्म प्रचलित होते हैं, उनके द्वारा केवल अहित ही साधित होता है। यद्यपि भक्तिकी अपार महिमाके कारण वैसे छल-धर्म या सहजिया-वाद भी प्रच्छन्न बौद्धवाद या मायावादकी अपेक्षा अत्यन्त उच्चस्तर पर हैं, तथापि परमपूज्य गोस्वामी-चरणोंमेंसे किसीने भी उसका (सहजियावादका) अनुमोदन नहीं किया है।

श्रील जीव गोस्वामी प्रभुके पदांकानुसरणके द्वारा हम यह जान पाते हैं कि श्रोत्रीय ब्रह्मनिष्ठ, सद्गुरुका आश्रय ग्रहण किये बिना श्रीमन्महाप्रभु द्वारा प्रचारित प्रेम-धर्ममें प्रवेश करनेका अधिकार नहीं पाया जा सकता है। श्रील नरोत्तमदास ठाकुर महाशयने भी श्रुति जैसी प्रामाणिक सरल बँगला गीतावलीमें ऐसा व्यक्त किया है कि श्रीगोस्वामीगणकी पदरेणु द्वारा अभिषिक्त न होनेसे हम राधाकृष्ण-तत्त्वको समझनेमें भूल कर बैठेंगे। उन्होंने गया है—

"एइ छः गोंसाइ जार तार मुँइ दास।
ता सबार पदरेणु मोर पंच ग्रास॥"
"रूप-रघुनाथ पदे हइबे आकूति।
कबे हाम बुझब से युगल पीरीति॥"

अतएव श्रील गोस्वामीगणका विचार छोड़ कर, श्रीगौर सुन्दरकी शिक्षाका परित्याग कर श्रीराधा-कृष्णके भजनके नामपर जो 'प्राकृत सहजियावाद' जगत्में चल रहा है, उससे जगतका हित होनेके विपरीत अहित ही होगा। श्रीश्रीराधाकृष्णकी प्रणय-विकृति भगवानकी ह्लादिनी-शक्तिगत विशुद्ध अप्राकृत व्यापार है; वह कोई प्राकृत पुरुष-स्त्रीका

व्यभिचार नहीं है। श्रील जीव गोस्वामीके निर्देशानुसार सद्गुरुके निकट वेदान्त आदि निखिल शास्त्रोंका सारार्थ श्रवण नहीं करनेसे प्राकृत सहजियावादका ही आचार-प्रचार होता है और आधुनिक प्रगतिशील शिक्षित समाज उन प्राकृत सहजियागणोंके आचरणको लक्ष्य करके विशुद्ध वैष्णवधर्मको Sex-religion अथवा नेड़ा-नेड़ीका धर्म बतलाकर कदर्थ करते हैं। इससे श्रील गोस्वामीगणके सद्धर्मप्रचारमें बाधा होती है।

भगवद्भक्ति नित्यसिद्ध भगवत-प्रेम स्वरूप है। वह कोई प्राकृत इन्द्रिय-तर्पणमूलक व्यभिचार नहीं है। भगवत्-प्रेम उदय होने पर प्राकृत इन्द्रिय-तृप्तिकी—स्त्रीसंभोगादिकी लालसा मनमें पैदा होने पर भी मुख-विकृतिरूप घृणा और थूत्कार होने लगता है। इन्द्रिय-तर्पणकी प्रवृत्ति ही संसार-बन्धनका मूल हेतु है—

"कृष्ण-बहिर्मुख हइया भोगवांछा करे।
निकटस्थ माया तारे झापटिया धरे॥"

अर्थात् जीव जभी भगवानकी सेवा करना छोड़ कर अपने इन्द्रिय सुखकी कामना करता है, उसी समय भगवानकी समीपस्थ माया उसे निगल जाती है। पुनः जब वह स्वसुख भोगकी कामनाका सम्पूर्णरूपसे परित्याग करके भगवानकी इन्द्रियोंको सुख प्रदान करनेमें ही अखिल चेष्टायुक्त हो जाता है, तभी वह मुक्तिपद या भगवान्के चरणोंकी सेवाका अधिकारी होता है। अपनी इन्द्रियोंकी तृप्तिकी कामनाको 'काम' कहते हैं तथा कृष्णेन्द्रिय प्रीतिवांछाको प्रेम कहते हैं—

"आत्मेन्द्रिय प्रीति वांछा तारे बलि काम।
कृष्णेन्द्रिय प्रीति इच्छा धरे प्रेम नाम॥"
(चैतन्यचरितामृत)

श्रील शुकदेव गोस्वामीने 'मुक्तिपद'की इस प्रकार व्याख्या की है—'मुक्ति हित्वा अन्यथा रूपं स्वरूपेन अवस्थिति'। श्रीमन्महाप्रभुने भी श्रीसनातन-शिक्षामें कहा है—'जीवेर स्वरूप हय नित्य कृष्णदास।' अतएव कृष्णदास जीव जिस समय स्वयं नकल कृष्ण बननेकी धृष्टता प्रकाश करता है, तभी मायादेवी उसे संसार बन्धनमें डाल कर त्रितापोंसे दग्ध करती हैं। सर्व-भोक्ता कृष्णका अनुकरण करके स्वयं भोक्ता बननेकी स्पृहा अथवा साधन सिद्ध अवस्थामें कृष्णमें मिल कर एकीभूत होनेकी अपचेष्टा या सहजियावाद—यह सब श्रीगोस्वामीगणद्वारा प्रदर्शित पथसे भिन्न है। कल्पित निर्भेद ब्रह्मानुसन्धान रूप मायावाद भागवत-धर्मके विरुद्ध आचरण है। श्रीमद्भागवतमें ऐसे मायावादका खण्डन कर 'धर्मः प्रोज्झितकैतवोऽत्र' मंत्रकी अवतारणा की गयी है। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष आदि वादियों अथवा कर्मी, ज्ञानी और त्यागी आदि व्यक्तियोंके लिये भागवत-धर्म नहीं है। श्रीमद्भागवत धर्मके उपदेशक श्रीनारद गोस्वामीने उन वादों एवं धर्मोंको 'जुगुप्सित-धर्म' अर्थात् निन्दनीय धर्म बतलाया है। श्रीनारद मुनिका पदाङ्कानुसरण करते हुए महामुनि श्रीकृष्णद्वैपायन वेदव्यासजीने श्रीमद्भागवतके प्रारम्भमें ही वस्तुनिर्देश रूप मङ्गलाचरण करते हुए धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष आदिकी कामनाओंको कैतव (छल-धर्मकी) संज्ञा देकर उनका प्रकृष्टरूपसे परित्याग करनेका उपदेश किया है। श्रीपाद श्रीधर

स्वामीने 'प्र'-शब्दसे-'प्रकृष्टरूपेण मोक्ष-वांछा पर्यन्त-को निरस्त किया है। धर्म, अर्थ, काम और मोक्षकी वांछासे युक्त व्यक्ति कदापि निर्मत्सर नहीं हो सकते हैं; क्योंकि वे सभी कामनायुक्त हैं। श्रीकृष्णदास कविराज गोस्वामीने भी कहा है—

तार मध्ये मोक्ष वांछा कैतव-प्रधान ।
जाहा हइते कृष्णभक्ति हय अन्तर्धान ॥

जो लोग कृष्णभक्तिका अनुशीलन करके अन्तमें निर्भेद ब्रह्मानुसंधानमें तत्पर हुए हैं, उनकी कृष्ण-भक्ति बहुत पहले ही अन्तर्द्धान हो चुकी है—ऐसा समझना चाहिए। अन्दर-ही-अन्दर निर्भेद ब्रह्मानु-संधान करते हुए ऊपरसे वैष्णवोचित वेश-धारणको ही कैतवधर्म कहते हैं। ऐसे कैतव-धर्मको श्रीमन्महा-प्रभुद्वारा प्रदर्शित एवं गोस्वामीगणद्वारा प्रचारित भागवत-धर्म या सद्धर्म कदापि नहीं कहा जा सकता है।

श्रीजीव गोस्वामीचरणने भी भागवतधर्मको सालोक्यादि समस्त प्रकारकी मोक्ष-वांछा आदिसे रहित बतलाया है। कृष्ण-भक्त निष्काम होता है, क्योंकि भक्ति शब्दका अर्थ ही "कृष्ण-प्रेम" है। बिना प्रेमके सेवा शुद्ध नहीं होती। कर्मी, ज्ञानी और योगीगण निष्काम न होनेके कारण कृष्ण-भक्ति या कृष्णप्रेमके अधिकारी नहीं होते। इसीलिए श्रीकृष्ण-दास कविराज गोस्वामीने कहा है—

कृष्ण भक्त निष्काम अतएव शान्त ।
भुक्ति-मुक्ति-सिद्धिकामी सकलेइ अशान्त॥

कृष्ण-सेवाके अतिरिक्त समस्त प्रकारकी वासनाएँ न्द्रिय-तर्पणमूलक हैं। ऐसी वासनाओंसे युक्त व्यक्ति कभी भी अनुकूल रूपसे कृष्णसेवा नहीं कर सकता है। कंस प्रतिकूल रूपमें कृष्ण-चिन्ता करता था। देवकीके गर्भसे कृष्णका आविर्भाव हो गया है—ऐसा जानकर कंस अधीर हो उठा; उठते, बैठते, चलते-फिरते, खाते-पीते तथा सोते, आदि—सब समय ही उसे कृष्णकी स्फूर्ति होती। श्रीकृष्णकी सदा-सर्वत्र स्फूर्त्ति होना महा सौभाग्यका विषय है। परन्तु प्रति-कूल कृष्णचिन्ता होनेके कारण कंस कृष्ण-भक्तिका अधिकारी न हो सका। प्रतिकूल कृष्ण-चिन्ताके द्वारा मोक्ष भी पाया जा सकता है, परन्तु उससे कृष्ण-भक्ति नहीं पायी जा सकती है। 'मुक्ति' ददातिकर्हि-चित् स्म न भक्तियोगं।'—यही सिद्धान्त है।

कृष्ण-विद्वेषी कंस, जरासन्ध आदिको श्रीकृष्ण सायुज्य-मुक्ति तक प्रदान कर सकते हैं। जिस सायुज्य मुक्तिको पानेके लिये बड़े-बड़े ज्ञानी-संन्यासी और ऋषि-मुनिजन नाना-प्रकारके अतिशय क्लेशपूर्ण साधनोंमें निरन्तर जुटे रहते हैं, उसी सायुज्यमुक्तिको कृष्णविद्वेषी असुरगण कृष्णद्वारा निहत होकर अना-यास ही प्राप्त हो जाते हैं। अतएव कृष्णभक्तियोगका आचरण करके अनुकूल कृष्ण-सेवाद्वारा जो स्वानु-भवसुख-फलाभिसन्धानरहित कृष्ण-प्रेम पाया जाता है, वह ब्रह्माके लिए भी परम दुर्लभ वस्तु है; उसे कृष्ण सहज ही किसीको प्रदान नहीं करते। आनुकू-ल्येन कृष्णानुशीलन ही कृष्ण-प्रेम प्राप्तिका एक मात्र उपाय है। इसलिये वह कृष्ण-प्रेम प्राकृत सहजिया-वाद नहीं है। इस अप्राकृत पारकीयभावको प्राकृत भूमिकामें आलोड़न करके, कृष्णानुसरणके बदले कृष्णानुकरणकी जो पद्धति है, वही प्राकृत सहजिया-वाद है। प्राकृत सहजियावाद मत्सरतापूर्ण एक कुपथ

मात्र है। श्रील गोस्वामीगणद्वारा प्रवर्त्तित विशुद्ध-प्रेम धर्म या सद्धर्म उससे सर्वथा पृथक है। श्रील जीव गोस्वामी ने भक्तिधर्मके आचरणकरनेवालोंके अधिकार एवं योग्यताका निर्देश दिया है—

"यत एवा सौ तदेकतात्पर्य्यत्वेन निर्मत्सराणां फलकामुकस्येव परोत्कर्षासहनं मत्सरता तद्रोहितानामेव तदुलत्वेन पश्वलंभने दयालुनामेव च सतां सधर्मपराणां विधीयते।"

अर्थात् उस भागवत-धर्मका पालन एकमात्र वही करते हैं, जो केवल कृष्णसेवानुकूल अखिलचेष्टायुक्त हों, दूसरोंके उत्कर्षसे जलन रूप मत्सरतासे रहित हो, अर्थ-धर्म, काम और मोक्ष आदि सब प्रकारकी कामनाओंसे सर्वथा रहित हो तथा पशु-हिंसामय कर्मकाण्डसे निवृत्त सद्धर्म परायण हो।

जिस पवित्र स्थान पर हमलोग आज श्रील जीव गोस्वामीकी विरह-स्मृतिकी पूजा करनेके लिये आज सम्मिलित हुए हैं, इसी अप्राकृत स्थलपर श्रीगौर-मनोभिष्ट पूरणकारी श्रीगोस्वामीगण मिलित होकर अनुकूल कृष्णानुशीलन किया करते थे। यहीं पर उन्होंने श्रीमन्महाप्रभुकी प्रेरणासे उस अनुकूल कृष्णानुशीलन रूप पथका—अन्याभिलाषिताशून्य, ज्ञान-कर्म-योगादिसे अनावृत विशुद्ध भक्ति-पथका जगत भरमें प्रचार-प्रसार करनेकी चमत्कारपूर्ण सुन्दर योजनाकी रूप-रेखा प्रस्तुत की थी—

नानाशास्त्र-विचारणैक-निपुणौ सद्धर्म-संस्थापकौ
लोकानां हितकारिणौ त्रिभुवने मान्यौ शरण्याकरौ।
राधाकृष्ण-पदारविन्द-भजनानन्देन मत्तालिकौ
वन्दे रूप-सनातनौ रघुयुगौ श्रीजीव-गोपालकौ॥

श्रवण - कीर्तनमय भागवत - धर्मकी प्रवर्त्तक-मण्डलीके मध्यमणि-स्वरूप श्रीजीव गोस्वामीने यहीं पर यह विचार प्रकट किया था कि 'श्रवण' शब्दका तात्पर्य 'अद्वयज्ञान भगवानके नाम-रूप-गुण-लीला और परिकर वैशिष्ट्य' के श्रवणसे है। अद्वयज्ञान भगवानके नाम, रूप, गुण और लीला एक दूसरेसे भिन्न नहीं हैं। कुरुक्षेत्रकी युद्ध-भूमिमें भगवान श्रीकृष्णकी भक्त प्रवर भीष्मके तीक्ष्ण शराघातोंसे क्षत-विक्षत होनेकी जो वीर रसकी लीला है, वह व्रज-बधुओंकी उन्नत-उज्ज्वल मधुर-रसकी लीलासे भिन्न नहीं है। हमारे बारह महाजनोंमेंसे अन्यतम श्रीभीष्मदेवने शरशैय्याके ऊपर शयन करते-करते वीर रसके माध्यमसे अखिल रसके आकार श्रीकृष्णका किस प्रकार रसास्वादन किया था, उसका श्रीमद्भागवतमें इस प्रकार वर्णन है—

युधि तुरगरजोविधूम्रविष्वक्–
कचलुलितश्रमवार्य्यलंकृतास्ये।
मम निशितशरैर्विभिद्यमान–
त्वचि विलसत्कवचेऽस्तु कृष्ण आत्मा॥

(श्रीमद्भा० १।६।३४)

भीष्मजी भगवान कृष्णकी स्तुति कर रहे हैं—'कुरुक्षेत्रकी रणस्थलीमें जिनके मुखमण्डल पर घोड़ोंकी टापकी धूलसे धूसरित घुँघराले बाल लहरा रहे थे, परिश्रमजन्य पसीनेकी छोटी-छोटी बूँदे उस मुखमण्डलमें शोभायमान हो रही थीं तथा मेरे तीक्ष्ण शरोंसे जिनका शरीर क्षत-विक्षत हो गया था, वे कवचमण्डित श्रीकृष्ण मेरे चित्तमें रमण करें।'

श्रीजीव गोस्वामीने—वीररसके भक्त श्रीभीष्म-

देहके द्वारा कृष्णका शरीर क्षत-विक्षत नहीं हुआ था—इसे स्कन्द पुराणसे प्रमाण देकर पुष्ट करते हुए कहते हैं—"असुरान् मोहयन् देवः क्रीडत्येषः सुरेष्वपि। मानुषान् मध्यया दृष्ट्या न मुक्तेषु कथञ्चनेति ॥ श्रीभीष्मस्य युद्धसमये दैत्याविष्टत्वात्तथा भानं युक्तमेव। किन्त्वधुना दुःस्वप्नदुःखस्येव तस्य निवेदनं कृतमिति ज्ञेयं ॥"

श्रील जीव गोस्वामीके विचारसे श्रीभीष्मदेवके तीक्ष्ण शरोंसे क्षत-विक्षत होनेका अभिनय करके भी भगवान् श्रीकृष्णने अपने प्रिय सखा अर्जुनको रथमें अकेला छोड़कर भी भीष्मके प्रति भक्त-वात्सल्य प्रदर्शन करनेके लिए उनसे निकट उपस्थित हुए थे। श्रीभीष्मदेवके शरोंसे क्षत-विक्षत होनेका बहाना मात्र करके उसीके माध्यमसे भक्त और भक्तवत्सल भगवानके बीच प्रेमपूर्ण भावनाओंका ही आदान-प्रदान हुआ था। यदि ऐसा न हुआ होता तो वे इसकी दूसरे प्रकारसे ही व्याख्या किये होते। अतएव भगवानकी प्रत्येक कृष्णलीला ही योग्यतानुसार शुद्ध-भक्तोंके लिए आस्वादनीय है। जिस प्रकार वात्सल्य-रससे ओत-प्रोत माता-पिता प्रेमाधार शिशुके समस्त कार्य-कलापका प्रेममें विभोर होकर उत्तम रूपमें ही आस्वादन करते हैं, उसी प्रकार शुद्धभक्त भी भागवतकी समस्त कृष्णलीलाओंका आस्वादन करते हैं। श्रीमद्भागवत दशम् स्कन्धका विशुद्धार्थ आस्वादन करनेके योग्यपात्र बनानेके लिये श्रीशुकदेव गोस्वामीने भागवतके प्रथम स्कन्धसे नवम् स्कन्धतक क्रमशः सर्ग-विसर्ग आदि नौ तत्त्वोंका ज्ञान कराया है और अन्तमें उन तत्त्वोंका ज्ञान प्रदानकर उचित अधिकारी बनाकर ही कृष्णकी बाल्य, पौगण्ड और कैशोर-लीलाओंका आस्वादन कराया है।

कृष्णलीलासे केवल मात्र रासलीला या वृन्दावनीय लीलाओंका ही बोध नहीं होता, अपितु जहाँ-जहाँ कृष्णका सम्पर्क है, वे सभी लीलाएँ श्रीकृष्णकी अप्राकृत लीलाएँ हैं। कृष्णकी रासलीला अथवा गोपियोंके साथ उनकी जो लीलाएँ हैं, वे मुक्त पुरुषोंके द्वारा ही आस्वादनीय हैं। पतित-पावन श्रीगौरसुन्दरने कृष्णकी रासलीलाका आस्वादन कभी भी खुलेरूपमें सर्व-साधारणके सामने नहीं किया। सर्व-साधारणकी तो बात ही क्या, उन्होंने गंभीराके भीतर स्वजातीय स्निग्ध स्वरूपदामोदर और रायरामानन्द जैसे दो-चार उच्च कोटिके रसिक भक्तोंके साथ ही कृष्णकी उन्नत उज्ज्वलरसमयी लीलाओंका आस्वादन किया है। साधारणभक्तोंके साथ उन्होंने हरि-संकीर्तन ही किये हैं। कृष्ण-तत्त्वको बिना समझे-बुझे गुणमयी मायाकी लीलामें ही प्रमत्त होकर जो लोग साधारण चाय और बीड़ी आदिकी मायाको भी छोड़नेमें असमर्थ हैं, वे कृष्णकी रासलीलादि श्रवण करनेके लिये अपनेमें मुक्ताभिमान रखते हैं, वे लोग ही प्राकृत सहजिया हैं। ऐसे लोगोंका जड़ीय काम-विचार ही प्राकृत सहजियावाद है।

श्रीरूपानुगसिद्धान्तविद् जीव गोस्वामीने इस प्रकारके प्राकृत सहजियावादरूप श्रवण-कीर्तनका कभी भी अनुमोदन नहीं किया। इसीलिये कुसिद्धान्तवादियोने ऐसा गलत प्रचार करनेमें भी तनिक संकोच नहीं किया कि श्रील रूपगोस्वामीने श्रीजीवगोस्वामीका परित्याग किया था।

श्रील जीव गोस्वामीने अप्राकृत भगवन्नाम-रूप-गुण-लीला-परिकरवैशिष्ट्यके श्रवण और कीर्तनके सम्बन्धमें इस प्रकार कहा है—"तथापि नाम्नः श्रवण-

मन्तःकरण शुद्धार्थमपेक्ष्य । शुद्धेचान्तःकरणे रूप श्रवणेन तदुदय योग्यता भवति। सम्यगुदितेचरूपे गुणानां स्फुरणं सम्पद्येत सम्पन्ने च गुणानं स्फुरणे परिकरवैशिष्ट्येव तद्वैशिष्ट्यं सम्पद्यते ततस्तेषु नाम-रूप-गुण-परिकरेषु सम्यक् स्फुरितेषु लीलानां स्फुरणं सुष्ठु भवतीत्यभिप्रेत्य साधन क्रम लिखितः। एवं कीर्तन-स्मरण योश्च ज्ञेयं । इदञ्च श्रवणं श्री-मन्मुखरितं सन्माहात्म्यं जातरुचीनां परम सुखदं'''।

अर्थात् पहले नाम श्रवण करके उसका शुद्धरूपसे कीर्तन करते-करते उसके क्रमशः रूप, गुण, लीला, और परिकर-वैशिष्ट्य स्फुरित होते हैं। बद्धजीवका अन्तःकरण विभिन्न प्रकारके अनर्थोंसे मलिन रहता हैं। ऐसी दशामें श्रीनाम-श्रवण ही पहला साधन क्रम है । श्रीचैतन्यमहाप्रभुने चित्त-दर्पणको साफ करनेके लिये तथा भवमहादावाग्नि अर्थात् कामाग्नि को बुझानेके लिये शुद्धनाम श्रवण करनेका ही उपदेश किया है । श्रील जीव गोस्वामीने भी ऐसा ही उपदेश दिया है। महाजन, साधु, गुरु और शास्त्र-- ये एक दूसरेसे पृथक नहीं हैं । सबका एक ही सिद्धान्त या उपदेश है। जहाँ अद्वयज्ञान भगवान् या भगवान्के परिकर-वैशिष्ट्यमें सिद्धान्तगत भेद परिलक्षित होता है,वहाँ दो बातें विवेचनीय होती हैं- यातो समझने में भूल है अथवा वे महाजन, साधु,गुरु या शास्त्र वस्तवमें महाजन, साधु, गुरु, या शास्त्र ही नहीं हैं। श्रीजीव गोस्वामी हमारे गुरु हैं, वहीं हमारे साधु हैं, तथा वे ही शास्त्र भी हैं। वे भगवानके अत्यन्त प्रियजन हैं। अतः वे भगवान श्रीचैतन्यदेव से अभिन्न नहीं हैं। श्रीलविश्वनाथ चक्रवर्त्तीठाकुरने "साक्षाद्धरित्वेन समस्त शास्त्रैः" तथा "किन्तु प्रभोर्यः प्रिय एव तस्य"—विचार द्वारा हमें इस अचिन्त्य-भेदाभेद तत्त्वकी शिक्षा दी है कि मन्त्र गुरु एव शिक्षागुरुगण—ये सभी भगवानके प्रकाश विग्रह हैं। वे भगवानको प्रकट कराकर हमें दिखा सकते हैं। अँग्रेजी भाषामें Tronsparent via media कहनेसे अच्छी तरहसे समझा जा सकता है । जिस प्रकार सूर्यके प्रकाशसे ही हम बहुत दूरी पर स्थित सूर्यको देख पाते हैं, उसी प्रकार भगवान्के प्रकाश विग्रहके माध्यमसे ही हम भगवानको समझ सकते हैं। सूर्यका प्रकाश सूर्यसे भेदाभेद तत्त्व है, अर्थात् प्रकाश, सूर्यसे भिन्न भी हैं और अभिन्न भी है। उसी प्रकार साधु, गुरु और शास्त्र, ये भगवानसे भेदाभेद तत्त्व हैं । गोस्वामीवर्ग—सेवक भगवान होने पर भी हमारे लिये सेव्य भगवानके समतुल्य ही हैं। उनकी सेवा भगवानकी सेवासे अभिन्न है तथा वे भगवानके अतिशय प्रियजन हैं। अतएव उनके द्वारा निर्धारित पथ ही हमारे लिये निर्भय-पथ है।

(क्रमशः)

———

श्रीमन्महाप्रभुकी शिक्षा

[गतांक से आगे]

इस विषयमें कारिका—

आकर्ष सन्निधौ लौहः प्रवृत्तो दृश्यते यथा ।
अणोर्महति चैतन्ये प्रवृत्तिः प्रीतिरेव सा ॥
प्रतिफलन-धर्मत्वात् बद्धजीवे निसर्गतः ।
इतरेषु च सर्वेषु रागोस्ति विषयादिषु ॥
लिङ्गभङ्गोत्तरा भक्तिः शुद्धप्रीतिरनुत्तमा ।
तत्पूर्वमात्मनिक्षेपात् भक्तिः प्रीतिमयी सती ॥
कृष्ण-बहिर्मुखे सा च विषयप्रीतिरेव हि ।
सा चैव कृष्णसान्मुख्यात् कृष्णप्रीतिः सुनिर्मला ॥
रत्यादि-भावपर्यन्तं स्वरूपलक्षणं स्मृतम् ।
दास्यसख्यादि-सम्बन्धात् स चैव रसतां व्रजेत् ॥
तरंगरंगिणी प्रीतिश्चिद्विलास-स्वरूपिणी ।
विषये सच्चिदानन्दे रसविस्तारिणी मता ।
प्रौढ़ानन्द—चमत्कार-रसः कृष्णे स्वभावतः ॥
कृष्णेति नामधेयन्तु जनाकर्ष-विशेषतः ।
चिद्घनानन्द-सर्वस्वं रूपं श्यामृतं प्रियम् ॥
अनन्त गुण-सम्पूर्णो लीलाढ्यः गोपीवल्लभः ।
एभिर्लिङ्गैर्हरिः साक्षाद्दृश्यते प्रेष्ठमात्मनः ॥
तेन वृन्दावने रम्ये तद्वने रमते तु यः ।
स धन्यः शुद्धबुद्धो हि केनोपनिषदां मते ॥

जिस प्रकार चुम्बक उपयुक्त निकट स्थल पर आते ही लोहा उसके प्रति स्वाभाविक धर्मवशतः आकर्षित हो जाता है, ठीक उसी प्रकार अणुचैतन्य जीव परमचैतन्यरूप कृष्णके प्रति सान्मुख्य दशामें स्वाभाविक रूपसे आकर्षित हो पड़ता है। जीवकी यह स्वाभाविक आकर्षित होनेकी प्रवृत्ति ही शुद्ध प्रीतिका स्वरूप लक्षण है। यह रागधर्म चित् जगत्में स्वभावसिद्ध है। जड़-जगत् इसी चित्-जगत्का प्रतिफलन है। जीव विकृत धर्मको अङ्गीकार करनेके कारण जीवका चित्प्रतिफलित जड़ धर्ममें इतर विषयोंके प्रति निसर्गजात एक प्रकारका राग उत्पन्न हो गया है। बद्धजीवका लिंग-शरीरसे छुटकारा न होने तक उसके चित्तमें वस्तुसिद्ध शुद्ध भाव उदित नहीं होता। लिंगशरीर भङ्ग होने पर जो भक्ति लक्षित होती है, वही विशुद्ध प्रीति है। इससे पूर्व जड़ीय स्वरूपका तिरस्कार और चित्-स्वरूपका आदररूप आत्मनिक्षेप-प्रक्रिया द्वारा जो भक्ति होती है, वह प्रीतिमयी तो हो सकती है, प्रीत्यात्मिका नहीं हो सकती। उसका लक्षण श्रीचैतन्यचरितामृतमें इस प्रकार बतलाया गया है—

रागात्मिका-भक्ति—'मुख्या' व्रजवासी-जने ।
तार अनुगत भक्तिर 'रागानुगा' नामे ॥
लोभे व्रजवासीर भावे करे अनुगति ।
शास्त्रयुक्ति नाहि माने रागानुगार प्रकृति ॥
बाह्य अभ्यन्तर—इहार दुइ त साधन ।
'बाह्ये' साधक देहे करे श्रवण-कीर्तन ॥
मने निज - सिद्ध देह करिया भावन ।
रात्रिदिने करे व्रजे कृष्णेर सेवन ॥

निजाभीष्ट कृष्ण-प्रेष्ठ पाछे त लागिया ।
निरन्तर सेवा करे अन्तर्मना हञा ॥
(म० २२।१४५,१४८,१५१-१५४)

विषय-प्रीति और कृष्ण-प्रीतिमें अन्तर यह है कि मूलतः एक ही प्रवृत्ति जब वह जड़-विषयोंसे हट कर शुद्धरूपसे कृष्ण-उन्मुखी होती है, तब वह कृष्ण-प्रीति है; परन्तु वही जब कृष्ण-बहिर्मुखी होकर विषयोंकी ओर लग जाती है, तब उसे 'जड़-प्रीति' या 'विषयासक्ति' कहते हैं। स्वरूप-लक्षणके विचारसे रतिसे लेकर महाभाव तक देखा जाता है। वही स्थायी भाव दास्य आदि सम्बन्धोंके उदयसे सामग्रियोंकी सहायतासे रसताको प्राप्त होता है। श्रीजीव गोस्वामीके प्रीतिसन्दर्भके अनुसार शिक्षाष्टक-भाष्यमें इस प्रकार लिखा गया है—

उल्लासमात्राधिक्यव्यञ्जिता प्रीतिः रतिः शान्तरसेऽनुमीयते। यस्यां जातायामन्यत्र तुच्छबुद्धिश्च जायते। ममतातिशयाविर्भावेन समृद्धा प्रीतिः प्रेमा दास्यरसे लक्ष्यते। यस्मिन् जाते तत्प्रीतिभङ्गहेतवो न प्रभवन्ति। विश्रम्भात्मकः प्रेमा प्रणयः सख्ये प्रतीयते। यस्मिन् जाते संभ्रमादि योग्यतायामपि तदभावः। प्रियत्वातिशयाभिमानेन कौटिल्यभासपूर्वक भाव-वैचित्र्यं दधत् प्रणयो मानः। यस्मिन् जाते श्रीभगवानपि तत्प्रणयकोपात् प्रेममयं भयं भजते। चेतो द्रवातिशयात्मकः प्रेमैव स्नेहः। यस्मिन् जाते महाबाष्पादिविकारः। दर्शनातृप्तिस्तस्य परमसामर्थ्यादौ सत्यपि केषाञ्चिदनिष्टाशङ्का च जायते। द्वावेतौ वात्सल्ये लक्ष्यते। स्नेह एकाभिलाषात्मको रागः। यस्मिन् जाते क्षणिकस्यापि विरहस्यासहिष्णुता। तत्संयोगपरं दुःखमपि सुखत्वेन भवति। तद्वियोगे तद्विपरीतम्। स एव रागोऽनुक्षणं स्व-विषयं नवनवत्वेनानुभावयन् स्वयं च नव-नवीभावमनुरागः। यस्मिन् जाते परस्पर-भावातिशयः प्रेम-वैचित्र्यं तत्सम्बन्धिन्यप्राणिन्यपि जन्मलालसा। विप्रलम्भे विस्फुर्त्तिश्च जायते। अनुराग एव असमोर्द्ध-चमत्कारेण उन्मादनं महाभावः। यस्मिन् जाते योगे निमेषासहता-कल्पक्षणत्वमित्यादिकं। वियोगे क्षणकल्पत्वमित्यादिकम्। उभयत्र महोद्दीप्ताशेषसात्त्विक विकारादिकं जायत इति।

[सन्मोदनभाष्य ७ म. श्लोक]

अप्रस्फुट-प्रीति प्रथमावस्थामें केवल उल्लासमयी होती है। तब उसका नाम—रति होता है। वैसी रति शान्तरसमें पायी जाती है। रतिके उदय होनेपर कृष्णके सिवा दूसरी वस्तुएँ अतीव तुच्छ प्रतीत होती हैं। उस उल्लासमयी रतिमें जब अतिशय ममताका आविर्भाव होता है, तब उसे 'प्रेम' कहते हैं। यह प्रेम दास्यरसमें अनुभूत होता है। जब प्रीति-भङ्गके कारणसमूह बलवान नहीं हो पाते, उस विश्वासमय प्रेमकी ऊँची अवस्थाको 'प्रणय' कहते हैं। यह प्रणय सख्यरसमें परिलक्षित होता है। प्रणय उदित होनेपर संभ्रमयोग्य अवसर उपस्थित होने पर भी संभ्रम नहीं होता। प्रियत्वके अतिशय अभिमानमें जब प्रणय कुछ वक्रताके आभाससे युक्त होता है, तब वह प्रेमवैचित्र्यरूप प्रणय ही मान कहलाता है। मान होने पर श्रीभगवान् भी उस प्रेममय भयको स्वीकार करते हैं। चित्तको अत्यन्त द्रवीभूत करनेवाला गाढ़ प्रेम ही स्नेह है। स्नेह उत्पन्न होने पर महाबाष्पादि विकार लक्षित होने लगते हैं तथा तद्विषयमें (अपने प्रियमें) महासामर्थ्य विद्यमान रहने पर भी उनके अनिष्टकी आशंका होने लगती है। स्नेह अभिलाषात्मक होने पर 'राग'

कहलाता है। राग उत्पन्न होने पर क्षणभरका भी वियोग सहा नहीं जाता। तथा उस समय स्पष्टरूपसे दुःख भी सुख प्रतीत होता है और प्राण देकर भी अपने प्रियतमकी प्रीति साधनमें प्रवृत्त हुआ जाता है। वही राग जब अपने विषयको (प्रियतम कृष्णको) नित्य-नवीनरूपमें सर्वदा अनुभव करने लगता है, और नित्य-नवीन रूपमें प्रकाशित होता है, तब उसको 'अनुराग' कहते हैं। अनुराग पैदा होने पर परस्पर अत्यन्त वशतारूप प्रेमवैचित्र्यके द्वारा अपने प्रियतमसे सम्बन्धित बाँस, वस्त्र, तृण आदि अप्राणियोंमें भी जन्म लेनेकी लालसा देखी जाती है। विप्रलंभमें विस्फूर्त्ति (बाह्यज्ञान रहित अवस्था) हो पड़ती है। जब अनुराग अत्यन्त प्रगाढ़ होकर असमोर्द्ध्व (जिसके न तो कोई बराबर हो और न जिससे कोई बड़ा हो) चमत्कारिताके सहित उन्मादन (उन्माद जैसी) अवस्थाको प्राप्त होता है, तब उसे 'महाभाव' कहते हैं। महाभावके उदय होने पर मिलनके समय आँखोंके पलकोंका गिरना भी सहा नहीं जाता तथा कल्प भी क्षणभरकी भाँत बीत जाता है। वियोगमें क्षणभर भी कल्पके समान लम्बा जान पड़ता है। अनुराग और महाभावमें समस्त सात्त्विक आदि विकारसमूह पूर्ण उज्ज्वलरूपमें (महादीप्त अवस्थामें) लक्षित होते हैं।

प्रीति अशेष-तरङ्ग-रङ्गमें चिद्विलास-स्वरूपिणी होकर सच्चिदानन्द-स्वरूप श्रीकृष्णमें सदा - सर्वदा रसका विस्तार करनेवाली होती है। प्रीति होने पर स्वाभाविकरूपमें कृष्णके प्रति प्रौढ़ानन्दचमत्कार-रस प्रकटित होता है। कृष्णतत्त्व जीवको विशेषरूपसे आकर्षण करते हैं; इसलिये उनका नाम कृष्ण है। श्यामरूप चिद्घनानन्द-सर्वस्व होकर परमामृत और प्रीतिजनक हैं। गोपीवल्लभ कृष्ण अनन्त कल्याण - गुणोंद्वारा सम्पूर्ण और नित्यलालारससे परिपूर्ण हैं। इन नाम, रूप, गुण और लीलापरिचयों के द्वारा आत्माके प्रियतम तत्त्व श्रीकृष्ण साक्षात् परिदृश्य हैं। उन कृष्णके साथ उनके नित्यलीलाधाम वृन्दावनमें जो रमण करते हैं, वे धन्य हैं और शुद्ध-बुद्ध हैं—

पञ्चांगे सद्धियामन्वयसुकृतिमतां सत्कृपैक प्रभवात्
राग प्राप्तेष्टदास्ये व्रजजन विहिते जायते लौल्यमद्धा।
वेदातीता हि भक्तिर्भवति तदनुगा कृष्णसेवैकरूपा
क्षिप्रं प्रीतिर्विशुद्धा समुदयति तया गौरशिक्षेव-गूढ़ा ॥
(केनोपनिषद)

श्रीमूर्त्ति-सेवा, रसिक भक्तोंके सङ्गमें श्रीभागवत-तात्पर्य-आस्वादन, अपनेसे श्रेष्ठ रागमार्गीय साधुका सङ्ग, श्रीनाम-कीर्तन और श्रीमथुरा मण्डलमें वास—इन पाँच अंगोंका निरपराध चित्तसे सेवन करनेसे जो सुकृति होती है, उससे प्राप्त सत्कृपाके प्रभावसे राग-प्राप्त व्रजवासियोंके परम इष्टदेव—श्रीकृष्णके दास्यमें लोभ पैदा होता है। उसी लोभसे व्रजवासी-जनकी भावानुगा कृष्णसेवारूपा वेदातीता रागानुगा नामक साधन-भक्ति उदित होती है। उसी भक्तिका साधन करते-करते शीघ्र ही विशुद्ध अर्थात् केवला प्रीति उदित होती है। श्रीचैतन्य महाप्रभुजीकी यही गूढ़ शिक्षा है।

श्रीश्रीकृष्णचैतन्यचन्द्रार्पणमस्तु

पवित्र बालकी चोरी और हिन्दू-जाति

दिसम्बरके अन्तिम सप्ताहमें श्रीनगरकी एक दरगाहसे हजरत मुहम्मद साहेबका पवित्र बाल चोरी चला गया था, जिसके कारणसे मुस्लिम जनतामें सर्वत्र ही अत्यन्त क्षोभका वातावरण फैल गया है। जगह-जगह पर काले झण्डोंका प्रदर्शन, दंगे, आगजनी, लूट-मार तथा नर-संहारकी घटनाएँ हुईं और हो रही हैं। पूर्वी पाकिस्तानमें असहाय अल्पसंख्यक हिन्दुओंके प्रति अत्याचार और नृशंसताकी जो भीषणतम घटनाएँ घटी हैं, उससे वहाँके हिन्दू पुनः आतंकित हो भाग खड़े हुए हैं। काश्मीर-सरकारसे लेकर भारतके केन्द्रिय सरकार तक इस घटनासे बड़ी उद्विग्न है। बालका पता लगाने वालेको एक लाख रुपया पुरस्कार देने की घोषणा की गयी थी। दिल्लीसे इनके लिये स्पेशल गुप्तचर-विभाग की भी व्यवस्था की गयी थी। बड़ी सरगर्मी और मुस्तैदीमें खोज हुई। खुशी की बात है, बाल जहाँसे चोरी गया था, वहीं पर रहस्यमय ढंगसे रखा हुआ मिल गया है।

पवित्र बाल तो मिल गया है; परन्तु इस घटनासे हिन्दूजातिकी वर्तमान दुरवस्था एवं भारत सरकारके भेदभावकी नीतिके विविध प्रकारके चित्र सामने आये हैं, जिन्हें नजर-अन्दाज नहीं किया जा सकता है। इस घटनाको लेकर एक तरफ जहाँ मुस्लिम जनता सामूहिक रूपमें भड़क उठी और सारे देशको झकझोर दिया, वहाँ उसी घटनाके कारण जम्मूके एक मन्दिरसे भगवान राम-कृष्णकी मूर्त्तियाँ चोरी चले जाने, पाकिस्तानमें हिन्दुओंकी व्यापक रूपमें हत्या करने, उनके घरोंमें आग लगा देने तथा हिन्दू नारियोंके प्रति घोर अत्याचार और शील भंग आदिकी घटनाएँ घटित होने पर भी वेदान्तवादी शान्तिप्रिय सहिष्णु! हिन्दू जाति इसे एक साधारण घटना समझ कर बेखबर सोयी हुई है। ये दोनों घटनाएँ जहाँ हिन्दू-मुसलमान दो जातियोंकी धर्म-निष्ठा, एकता, ज्वलंत जीवनी शक्ति तथा कर्मण्यताके पृथक्-पृथक चित्रोंको प्रस्तुत करती हैं, वहाँ भारतके वर्तमान धर्म निरपेक्ष सरकारके भेदभाव पूर्ण नीतिको भी प्रकट करती हैं। आज संसदोंसे हिन्दू संस्कृतिके साथ खिलवाड़ किया जाता है, रामायण और मनुस्मृतिके पन्ने फाड़े और जलाये जाते हैं, हिन्दू कोडबिल पास होता है, हिन्दू साधु-संन्यासियों पर नियंत्रण कानून पेश होते हैं, मन्दिर और मठ आदिकी धार्मिक जायदादें छीनी जा रही हैं, पर हम ऐसे शान्तिवादी (?) हैं कि देख सुन कर भी बिलकुल चुप रहते हैं। तनिक प्रतिवाद भी करनेकी आवश्यकता नहीं समझते।

इस धर्म-निरपेक्ष सरकारके राज्यमें एक ओर अल्प संख्यकों के प्रति सर्व प्रकारसे सहानुभूति बरती जा रही है, दूसरी ओर हिन्दुओं के प्रति सर्व प्रकारसे उपेक्षा ही नहीं बरती जाती, अधिकन्तु इस जातिको पृथ्वीतलसे मिटा देने की ही चेष्टा की जारही है। धर्म निरपेक्षताका तात्पर्य क्या अन्यान्य जातियों के प्रति सहानुभूति तथा हिन्दू जातिके प्रति उपेक्षा एवं घृणा ही है? या और कुछ? आज बौद्ध-धर्मके मठादि निर्माणके लिये करोड़ों रुपये लगाये जाते हैं, पवित्र बालकी खोजके लिये क्या नहीं किया गया है, परन्तु हिन्दू-मन्दिरोंकी मूर्त्तियोंको खोजने तथा पाकिस्तानमें हिदुओंके प्रति घोर अन्याय अत्याचारको रोकने के लिये भारत सरकारने क्या किया? क्या यही धर्म निरपेक्षताका नमूना है?

सबके प्रति सहानुभूति हो हम इसकी विरोधिता नहीं करते, परन्तु हिन्दुओंके प्रति ही ऐसी निरपेक्षता एवं उपेक्षा क्यों ?

आज सरकार हिन्दू जातिको, उसकी संस्कृति और नस्लको सर्वथा नष्ट करने पर तुली हुई है। आज एक तरफ नागालैण्ड के रूपमें पृथक् राज्यकी स्थापना द्वारा नागाओं एवं अन्यान्य जातियों की नस्ल और संस्कृतिकी रक्षा की जा रही है, हरियाना गायों, मुर्गियों और अन्यान्य पशु-पक्षियोंकी नस्लें भी सुधारी एवं सुरक्षित रखी जा रही हैं; परन्तु आज हिन्दू-जाति पशुओंसे भी बदतर हो गयी है। पिछली जन-गणनाके अनुसार भारतमें मुसलमान, इसाई, बौद्ध और सिख आदिकी जनसंख्यामें प्रचुर वृद्धि हुई है, वहाँ हिन्दुओंकी जनसंख्या काफी घटी है। यह हमारी सरकार एवं हिन्दू जनताकी उपेक्षापूर्ण नीतिका ही दुष्परिणाम है। यदि यह उपेक्षापूर्ण नीति चालू रही तो एक दिन शीघ्र ही हिन्द-जातिका नाम-निशाना भी मिट जानेकी सम्भावना है। पता नहीं यह सब देख-सुन कर भी न जाने कब तक हम बे खबर, अकर्मण्य, निक्रिय और निर्लज्ज बने रहेंगे तथा संसारकी दूसरी जातियोंकी तरह सम्मानके साथ जीवित रहना सीखेंगे ?

प्रचार-प्रसङ्ग

गत १८ पौष, शुक्रवार कृष्णचतुर्थीको श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके सभी शाखा मठोंमें आधुनिक युगमें श्रीचैतन्य महाप्रभुके आचरित और प्रचारित विशुद्ध प्रेम-धर्मका प्रचार करने वाले जगद्गुरु ॐविष्णुपाद श्री श्रीमद्भक्ति सिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी ठाकुरकी तिरोभाव तिथिको विराट समारोह पूर्वक मनाया गया है। परमाराध्यतम ॐविष्णुपाद श्रीश्रीमद्भक्ति प्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजकी अध्यक्षतामें श्रीधाम नवद्वीपके श्रीदेवानन्द गौड़ीय मठमें एक सभाका आयोजन किया गया, जिसमें उन्होंने श्रील प्रभुपादके अतिमर्त्य चरित्र, उनके विविध प्रकारके दानका वैशिष्ट्य एवं उनकी अतिमर्त्य शिक्षाके सम्बन्धमें बड़ा ही भाव पूर्ण विवेचन प्रस्तुत किया। उपस्थित सभीको महाप्रसाद वितरण किया गया है।

श्रीकेशवजी गौड़ीय मठमें भी त्रिदण्डि-स्वामी श्रीमद्भक्ति कुशल नारसिंह महाराजके सभापतित्व में सवेरे एक सभा हुई, जिसमें पूज्यपाद महाराजने संक्षेपमें श्रीलप्रभुपादकी शिक्षाके वैशिष्ट्यके सम्बन्धमें उपदेश किया। तदनन्तर त्रिदण्डि-स्वामी श्रीमद्भक्ति वेदान्त नारायण महाराजने श्रीलप्रभुपादके जीवन-चरित्र, प्रचार-वैशिष्ट्य तथा उनकी शिक्षाओंके सम्बन्धमें विस्तार पूर्वक भाषण दिया। उपस्थित सभीको महाप्रसाद किया गया है।

अन्यान्य-महोत्सव

गत २६ पौष, ११ जनवरी, शनिवारको श्रीधाम नवद्वीपस्थ श्रीदेवानन्द गौड़ीय मठमें श्रीदेवानन्द पण्डितका तिरोभाव महोत्सव एवं २७ पौष, १८ जनवरी, रविवारको श्रीउद्धारण गौड़ीय मठ, चुँचुड़ा में श्रीउद्धारणदत्त ठाकुरका तिरोभाव महोत्सव मनाया गया है। उक्त दोनों दिनों उन-उन गौर पार्षदोंके अप्राकृत जीवन-चरित्रकी आलोचनाकी गयी है।